

बिहार राज्य हिंदू धार्मिक न्यास बोर्ड

बनाम

भुवनेश्वर प्रसाद चौधरी और एक अन्य

9 अप्रैल, 1974

[के.के. मैथ्यू और ए. अलागिरीस्वामी, न्यायमूर्तिगण]

बिहार हिंदू धार्मिक न्यास अधिनियम, धारा 2 - मूर्ति को संपत्तियों का समर्पण - कब एक धार्मिक न्यास होता है।

एक परिवार के सदस्यों ने विभिन्न दस्तावेजों का निष्पादन किया जिसका प्रभाव यह था कि निष्पादकों ने एक देवता को समर्पित कुछ संपत्तियों से अपने किसी भी हक या हित को पूरी तरह से अलग कर लिया था, और वे संपत्तियां देवता की संपत्तियां बन गई थीं। अपीलकर्ता ने उत्तरदाता से, जिसे सभी समर्पित संपत्तियों का शेष और प्रबंधक नियुक्त किया गया था, विवरणी प्रस्तुत करने की मांग की। उत्तरदाता ने यह तर्क देते हुए मुकदमा दायर किया कि मंदिर बिहार हिंदू धार्मिक न्यास अधिनियम की धारा 2 (1) के अर्थ के भीतर एक धार्मिक न्यास नहीं है, बल्कि यह एक निजी धर्मस्व है। विचारण न्यायालय ने माना कि यह न्यास ऐसा था जिसमें जनता का हित था। उच्च न्यायालय ने अपील में इसके विपरीत विचार अपनाया।

इस न्यायालय में अपील की अनुमति देते हुए,

अभिनिर्धारित : इस मामले के तथ्यों के आधार पर न्यास को धार्मिक न्यास माना जाना चाहिए, क्योंकि जनता इसमें रुचि रखती है।

मंदिर स्वतंत्र परिसर के भीतर स्थित था न कि संस्थापकों के आवासीय परिसर के भीतर। इसमें पुजारियों की नियुक्ति और बर्खास्तगी का प्रावधान था। परिवार के सदस्यों के पास एकमात्र अधिकार यह था कि परिवार का एक सदस्य प्रबंधक या शेष हो सकता था; लेकिन शेष बाहरी व्यक्तियों (पंचों) के एक निकाय के अधीक्षण और नियंत्रण के अधीन था,

जिन्हें शैबैत को हटाने की शक्ति दी गई थी यदि वह उचित रूप से कार्य नहीं करता। इस तथ्य का इससे बेहतर कोई संकेत नहीं हो सकता कि जनता के सदस्यों को मंदिर के प्रबंधन के साथ जोड़ा गया था और उनमें इसके प्रबंधन के प्रति हित पैदा किया गया था, जिससे यह न्यास सीधे अधिनियम की धारा 2 (जी) के अंतर्गत आ जाता है। यह तथ्य कि पंचों से संबंधित प्रावधान केवल विलेख के निष्पादकों की मृत्यु के बाद प्रभावी होना था, प्रश्न के गुण-दोष को प्रभावित नहीं करता है। इसमें फकीरों, साधुओं और सामयिक त्योहारों पर खर्च का भी प्रावधान था। चूंकि धर्मस्व स्वयं मूर्ति के पक्ष में थी, इसलिए बिना किसी हस्तक्षेप के जनता द्वारा उपयोग का प्रमाण इस बात का पुख्ता साक्ष्य होगा कि समर्पण जनता के पक्ष में था। [870 एफ-एच; 871 सी-डी]

देओकी नंदन बनाम मुरलीधर [1956] एस.सी.आर. 756, का अनुसरण किया गया।

भगवान दीन बनाम हर स्वरूप ए.आई.आर. 1940 पी.सी. 7 और *रामसरन दास बनाम जय राम दास*, ए.आई.आर. 1943 पट. 135, की व्याख्या की गई।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1967 की दीवानी अपील संख्या 1871

1960 की मूल डिक्री संख्या 345 से अपील में पटना उच्च न्यायालय के 3 मई, 1965 के निर्णय और डिक्री से अपील।

अपीलकर्ता के लिए *डी. गोबर्धन*।

उत्तरदाता संख्या 1 के लिए *के.के. सिन्हा* और *एस.के. सिन्हा*।

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा सुनाया गया-

अलागिरीस्वामी, न्यायमूर्ति- इस अपील में निर्णय के लिए प्रश्न यह है कि क्या बिहार राज्य के मौजा देवगांव गांव में श्री महाराजा राम जानकी लक्ष्मण महाराज का मंदिर बिहार हिंदू धार्मिक न्यास अधिनियम की धारा 2, खंड (1) के अर्थ में एक धार्मिक न्यास है, या एक निजी धर्मस्व है।

दो भाई, राम अधिकारी चौधरी और राम लोचन चौधरी, और उनके भाई के पुत्र अमीर प्रसाद चौधरी, ने स्वयं के लिए और रामकांत प्रसाद चौधरी के संरक्षक के रूप में, जो सभी संयुक्त हिंदू परिवार के सदस्य थे, 17.6.1921 को एक समर्पणनामा निष्पादित किया जिसके द्वारा उन्होंने उपरोक्त मंदिर को कुछ संपत्तियां समर्पित कीं। समर्पण के उस विलेख द्वारा उन्होंने संपत्तियों में अपने किसी भी हित को पूरी तरह से त्याग दिया, सिवाय इसके कि वे और उनके परिवार के सदस्य शैबैत होंगे। उसी विलेख द्वारा 5 व्यक्ति, जो परिवार के लिए पूर्णतः अजनबी थे, समय-समय पर निष्पादकों की मृत्यु के बाद प्रबंधक, शैबैत से आय और व्यय के खातों का प्रतिदान लेने के लिए पंच नियुक्त किए गए थे। "यदि उक्त पंचों की राय में समय-समय पर प्रबंधक और शैबैत को (अपठनीय) और फिजूलखर्च पाया जाए या समर्पित संपत्ति की आय के संबंध में कोई हानि हो, तो उस स्थिति में उन्हें समय-समय पर प्रबंधक शैबैत को कार्यमुक्त कर देना चाहिए और उनके स्थान पर निष्पादकों के परिवार के सदस्यों में से अन्य योग्य प्रबंधक, शैबैत नियुक्त करना चाहिए।" पंचों को अपने पदों पर खाली जगहों को भरने का अधिकार दिया गया।

7-12-1928 को राम अधिकारी चौधरी ने अकेले ही मंदिर के पक्ष में कुछ और संपत्तियां दान करते हुए एक और समर्पणनामा निष्पादित किया, जिसमें पहले के समर्पणनामा के समान ही शर्तें थीं; लेकिन पिछले विलेख में उल्लिखित 5 पंचों के स्थान पर उन्होंने 5 पंचों का एक नया सेट नियुक्त किया, जिनमें से केवल एक पंच पहले के सेट से था। इस विलेख में भी यह प्रावधान किया गया था कि "यदि कोई भविष्य का शैबैत समर्पित संपत्तियों का प्रबंधन करने में विफल रहता है, उपरोक्त देवताओं के रागभोग की उचित व्यवस्था नहीं करता है, लापरवाही दिखाता है, संपत्ति को खराब करता है, और अनावश्यक खर्च करता है, तो उक्त पंच उक्त शैबैत को बर्खास्त करने और मेरे (निष्पादक के) परिवार के सदस्यों में से किसी एक को नियुक्त करने के लिए सक्षम होंगे, जो ईमानदार और सक्षम हो।"

14.7.1934 को राम अधिकारी चौधरी ने 'इकरारनामा' नामक एक अन्य विलेख निष्पादित किया, जिसमें इस तथ्य का उल्लेख किया गया था कि उन्होंने भगवत प्रसाद चौधरी, वर्तमान प्रथम उत्तरदाता को गोद लिया था, और उन्हें पिछले दो समर्पणनामों के अंतर्गत आने वाली सभी समर्पित संपत्तियों का शेबैत और प्रबंधक नियुक्त किया गया था। उन्होंने यह भी निर्देश दिया कि "समर्पित संपत्ति की आय और व्यय के खाते के रखरखाव के संबंध में 7 दिसंबर, 1928 के समर्पणनामा में निहित शर्तें समर्पित संपत्ति के प्रबंधन और आय-व्यय के खाते के रखरखाव के संबंध में लागू रहेंगी।" उन्होंने पहले के विलेख में उल्लिखित पंचों के बारे में कुछ भी उल्लेख नहीं किया, लेकिन प्रावधान किया कि "भविष्य में शेबैतों की नियुक्ति के संबंध में, पालन की जाने वाली प्रथा यह होगी कि पदस्थ शेबैत अपने जीवनकाल के दौरान नियुक्त करने के लिए पूर्णतः सक्षम होगा या उसके बाद उसके पुत्रों में से जो भी जीवित और सबसे सक्षम होगा, उसे एक के बाद एक उक्त देवताओं का शेबैत नियुक्त किया जाएगा। यदि पदस्थ शेबैत के परिवार में कोई पुरुष संतान न हो, तो सबसे पहले पुरुष संतान के बीच या यदि उपरोक्त व्यक्तियों के बच्चों के बीच कोई सक्षम व्यक्ति न हो, तो पदस्थ शेबैत मेरे चचेरे भाई (पिता के भाई के पुत्र) के बच्चों में से एक सक्षम शेबैत नियुक्त करने के लिए सक्षम होगा। लेकिन पदस्थ शेबैत अन्य व्यक्तियों के परिवार से शेबैत नियुक्त करने के लिए सक्षम नहीं होगा और न ही होगा।"

इस मामले के उद्देश्य के लिए इस प्रश्न में जाने की आवश्यकता नहीं है कि क्या 7.12.1928 के समर्पणनामा और 14.7.1934 के इकरारनामा को निष्पादित करके राम अधिकारी चौधरी 1921 के दस्तावेज़ के प्रावधानों को बदलने के लिए सक्षम थे। यह भी स्पष्ट नहीं है कि क्या इस दस्तावेज़ के माध्यम से उनका इरादा पंचों और उनकी शक्तियों के संबंध में पिछले दस्तावेज़ों में निहित प्रावधानों को समाप्त करना था। जो भी हो, हमारी राय है कि इन सभी दस्तावेज़ों के संबंध में मुख्य बिंदु यह तथ्य है कि निष्पादकों ने समर्पित संपत्तियों में अपने किसी भी हक या हित को पूरी तरह से त्याग दिया था, जो इस प्रकार देवता की

संपत्तियां बन गईं। परिवार के सदस्यों के पास उसके बाद एकमात्र शक्ति मंदिर के शेष और प्रबंधक होने की थी।

अधीनस्थ न्यायाधीश, जिन्होंने इस मुकदमे का विचारण किया, ने माना कि 1921 के दस्तावेज ने एक ऐसा न्यास बनाया जिसमें जनता की रुचि थी। लेकिन इसमें कुछ हद तक वे अधिनियम की धारा 2 (जी) (i) के गलत पठन से प्रभावित प्रतीत होते हैं, विशेष रूप से "ऐसे न्यास के अंतर्गत किसी भी धार्मिक या धर्मार्थ कार्य में भाग लेना" शब्द। उन्होंने 'कार्य संपादन' शब्द को 'प्रशासन' समझ लिया। शब्दों के बीच का अंतर इस बारे में बहुत अंतर पैदा करेगा कि क्या जनता के किसी सदस्य को धार्मिक न्यास में रुचि रखने वाला कहा जा सकता है। हमने आधिकारिक प्रकाशन में मुद्रित अधिनियम की प्रति मंगवाई है और उसका अवलोकन किया है और हमने पाया है कि इस्तेमाल किया गया शब्द 'कार्य संपादन' है न कि 'प्रशासन'। इसलिए, इस मामले में निर्णय के लिए प्रश्न धारा 2 (जी) (i) में 'प्रशासन' शब्द की कथित उपस्थिति के अलावा अन्य आधारों पर तय किया जाना है।

दूसरी ओर, उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने यह विचार अपनाया कि केवल यह तथ्य कि मंदिर संस्थापक के घर के पास होने के बावजूद स्वतंत्र चहारदीवारी के भीतर स्थित था, अपने आप में यह संकेत नहीं दे सकता कि मंदिर सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए था। उन्होंने आगे यह विचार अपनाया कि "फकीरों, साधुओं और सामयिक त्योहारों पर होने वाला खर्च मुख्य उद्देश्य, यानी देवता की पूजा के लिए सहायक होगा।" दस्तावेजों में उल्लिखित पंचों के संबंध में उनकी राय थी कि उन्हें मंदिर के मामलों और न्यास संपत्तियों में कार्य करने या कोई हिस्सा लेने का कोई अवसर नहीं मिला, और ऐसा कुछ भी नहीं था जिससे संकेत मिले कि न्यास के संस्थापक का इरादा यह था कि जनता के सदस्यों को मंदिर और न्यास संपत्तियों के प्रबंधन और पूजा के साथ जोड़ा जाना चाहिए। उन्होंने यह भी माना कि "केवल यह तथ्य कि जनता के कुछ अन्य सदस्य राम नवमी, जन्माष्टमी आदि जैसे त्योहारों

में शामिल हो सकते हैं, इस निष्कर्ष की पुष्टि नहीं करता है कि न्यास या मंदिर का निर्माण बड़े पैमाने पर जनता या उसके किसी बड़े हिस्से के लाभ या पूजा के लिए किया गया था।"

हम उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों से सहमत होने में असमर्थ हैं। हमारी राय है कि उच्च न्यायालय का निर्णय इस न्यायालय के *देओकी नंदन बनाम मुरलीधर* (1956 एस.सी.आर. 756) के निर्णय के प्रभाव को समझने में विफलता के कारण है। उस मामले में संपत्तियों का समर्पण वर्तमान मामले की तरह पूर्ण और स्पष्ट नहीं था। केवल पुरुष संतान के अभाव में, पूरी अचल संपत्ति देवता के नाम पर धर्मस्व होनी थी। संपत्तियों से होने वाली आय का आधा हिस्सा वसीयतकर्ता की दो पत्नियों द्वारा उनके जीवनकाल के दौरान उनके रखरखाव के लिए लिया जाना था। यदि वसीयतकर्ता को पुत्र पैदा होता, तो संपत्तियों को पुत्र और मंदिर के बीच विभाजित किया जाना था। मंदिर और उसकी संपत्तियों के प्रबंधन की देखभाल के लिए 4 व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त की गई थी, और इनमें से 2 वसीयतकर्ता के संबंधी नहीं थे। समिति "सर्वसम्मति से वसीयतकर्ता के भतीजे को मुतवल्ली नियुक्त कर सकती थी"। वर्तमान मामले में दस्तावेज केवल थोड़े अलग हैं क्योंकि वे परिवार के सदस्यों के शैबैत होने का प्रावधान करते हैं। लेकिन पंच सभी बाहरी व्यक्ति हैं। *देओकी नंदन बनाम मुरलीधर* में इस न्यायालय ने कुछ तथ्यों को यह संकेत देते हुए संदर्भित किया कि धर्मस्व जनता के लिए है:

"सबसे पहले, यह तथ्य है कि मूर्ति को आवासीय क्वार्टरों के परिसर के भीतर नहीं बल्कि उसी उद्देश्य के लिए एक खाली स्थान पर निर्मित एक अलग इमारत में स्थापित किया गया था। और जैसा कि *डेलरोस बानू बेगम बनाम नवाब सैयद असगर अली खान*¹ में बताया गया है, यह तय करने में एक कारक है कि कोई धर्मस्व निजी है या सार्वजनिक, क्या पूजा स्थल किसी निजी घर के भीतर स्थित है या सार्वजनिक इमारत में। दूसरे, यह स्वीकार किया गया है कि कुछ मूर्तियां

1 1875 15 बी:एन. एलआर. 167, 186.

मंदिर परिसर के भीतर एक चबूतरे पर स्थायी रूप से स्थापित हैं। यह धर्मस्व के निजी होने के बजाय सार्वजनिक होने के अधिक सुसंगत है। तीसरे, मंदिर में पूजा समय-समय पर नियुक्त एक अर्चक द्वारा की जाती है।"

वर्तमान मामले में पहला कारक मौजूद है। दूसरे के बारे में कोई साक्ष्य नहीं है। पुजारियों की नियुक्ति और बर्खास्तगी का भी प्रावधान है। हालांकि इस मामले में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है, जैसा कि उस मामले में था, कि मंदिर जनता के अनुरोध पर बनाया गया था, हमें नहीं लगता कि इससे बहुत फर्क पड़ता है। हम विशेष रूप से इस विचार के हैं कि परिवार के पास एकमात्र अधिकार परिवार के एक सदस्य को प्रबंधक या शेबैत के रूप में रखने का था और शेबैत बाहरी व्यक्तियों के एक निकाय द्वारा अधीक्षण और नियंत्रण के अधीन था, जिन्हें शेबैत को हटाने की शक्ति दी गई थी यदि उसने उचित रूप से कार्य नहीं किया, तो यह मंदिर के सार्वजनिक चरित्र के प्रश्न के लिए निर्णायक है। इस तथ्य का इससे बेहतर कोई संकेत नहीं हो सकता कि जनता के सदस्यों को मंदिर के प्रबंधन के साथ जोड़ा गया था और उनके प्रबंधन में रुचि पैदा की गई थी, जिससे मामला सीधे अधिनियम की धारा 2 के खंड (जी) के भीतर आ जाता है। यह तथ्य कि पंचों के संबंध में यह प्रावधान विलेख के निष्पादकों की मृत्यु के बाद ही प्रभावी होना था, प्रश्न के गुण-दोष को प्रभावित नहीं करता है। हमारी यह भी राय है कि उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों का यह विचार सही नहीं था कि इस तथ्य का कि जनता के सदस्यों ने मंदिर में पूजा में भाग लिया और फकीरों आदि के लिए प्रावधान का कोई महत्व नहीं था, और इस उद्देश्य के लिए प्रिवी काउंसिल के *भगवान दीन बनाम हर स्वरूप* (ए.आई.आर. 1940 पी.सी. 7) के निर्णय पर भरोसा करना सही नहीं था। उस मामले में संपत्तियां किसी मूर्ति या मंदिर के पक्ष में नहीं, बल्कि एक निजी व्यक्ति और उसके उत्तराधिकारियों के पक्ष में दी गई थीं, जो एक मंदिर का रखरखाव कर रहा था। उस मामले में तर्क यह था कि अनुदान के बाद अनुदानग्राही के परिवार ने मंदिर को पूजा के उद्देश्यों के लिए जनता को समर्पित कर दिया होगा और प्रिवी

काउंसिल ने इसी तर्क को यह कहते हुए खारिज कर दिया था कि चूंकि अनुदान शुरू में एक व्यक्ति को था, इसलिए यह दलील कि इसे बाद में परिवार द्वारा जनता को समर्पित किया गया था, स्पष्ट रूप से सिद्ध की जानी चाहिए और यह केवल यह दिखाने से सिद्ध नहीं होता कि जनता को मंदिर में पूजा करने की अनुमति दी गई थी। लेकिन वर्तमान मामले में, *देओकी नंदन बनाम मुरलीधर* के मामले की तरह, धर्मस्व स्वयं मूर्ति के पक्ष में है और ऐसी परिस्थितियों में बिना किसी हस्तक्षेप के जनता द्वारा उपयोग का प्रमाण पुख्ता साक्ष्य होगा कि समर्पण जनता के पक्ष में था। पटना उच्च न्यायालय की खंडपीठ का *रामसरन दास बनाम जय राम दास* (ए.आई.आर. 1943 पट 135) में यह निर्णय कि "एक मूर्ति को समर्पण में साधुओं, सामयिक मेहमानों और राहगीरों की सेवा के लिए केवल एक प्रावधान समर्पण को पर्याप्त रूप से सार्वजनिक उद्देश्य के लिए नहीं बनाता है" को उस मामले की पृष्ठभूमि में समझा जाना चाहिए जहां संपत्तियां मूल रूप से विभिन्न महंतों के नाम पर थीं और संपत्ति को अनुदानग्राही द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी रखा जाना था और न्यायालय ने माना कि उपहार व्यक्तिगत रूप से महंत को था।

इसलिए, हम संतुष्ट हैं कि इस मामले के तथ्यों के आधार पर न्यास को धार्मिक न्यास माना जाना चाहिए क्योंकि जनता इसमें रुचि रखती है। अपील स्वीकार की जाती है और उच्च न्यायालय के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया जाता है, और विद्वान अधीनस्थ न्यायाधीश के निर्णय को बहाल किया जाता है। प्रथम उत्तरदाता अपीलकर्ता को लागत का भुगतान करेगा। 1973 की सी.एम.पी. संख्या 3132 स्वीकार की जाती है।

वी.पी.एस.

अपील स्वीकृत।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।